ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-12* January- 2021
Innovation The Research Concept

# प्राचीन भारत में ऋण एवं महाजनी व्यवस्था

# Debt And Mahajani System in Ancient India

Paper Submission: 15/01/2021, Date of Acceptance: 26/01/2021, Date of Publication: 27/01/2021

**प्रताप विजय कुमार**
सहयुक्त आचार्य,
प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
हीरालाल रामनिवास स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खलीलाबाद, संत कबीर नगर,
भारत

**सारांश**

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के एक विशेष उपांग के रूप में ऋण एवं महाजनी व्यवस्था का अस्तित्व प्रकट होता है। धर्मशास्त्रों में कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य के साथ कुसीद को भी वैश्यों की जीविका का साधन बताया गया है, तथा केवल कुसीद के माध्यम से जीविकोपार्जन करने वाले को कुसीदी कहा गया है। कुछ ऐसे भी महाजन थे जो केवल खाद्यान्न के रूप में ऋण देते थें, जिन्हे वाधुर्षिक कहा गया है। धर्मशास्त्रों में ऋणादान से सम्बन्धित विस्तृत नियमों का प्रतिपादन किया गया, जिसमें ऋणदाताओं के धन की सुरक्षित वापसी की व्यवस्था सुनिश्चित की गयी और साथ ही ऋण ग्रहण करने वालों को महाजनों के शोषण से बचाने के लिए व्याज की दरों एवं ब्याज की अधिकतम् सीमा का भी निर्धारण किया गया। धर्मग्रन्थों में ऋणदाता के लिए उत्तमर्ण एवं ऋण ग्रहीता के लिए अधमर्ण संज्ञा का प्रयोग मिलता है। प्राचीन भारतीय साहित्य, एवं अन्य श्रोतों से ज्ञात होता है कि व्यापार–वाणिज्य, दैनिक कार्य , कृषि पशुपालन आदि के साथ–साथ लोग उपनयन, विवाह अन्त्येष्टि, यज्ञ, एवं अन्य धार्मिक प्रयोजन के अवसर पर भी ऋण ग्रहण करते थे और अनेक व्यक्ति ऋण के भुगतान में असमर्थ होने पर सन्यास या दासत्व तक ग्रहण करने पर विवश हो जाते थे। बौद्ध ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि गौतम बुद्ध ऋण न चुका पाने वाले लोगों को बौद्ध संघ में प्रवेश निषेध भी किया था, क्योकि लोग ऋण चुकाने में असमर्थ होने पर भी संघ में प्रवेश करते रहे होगें। इस प्रकार प्राचीन भारतीय अनेक सन्दर्भो में ऋण एवं महाजनी व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। इसी व्यवस्था के परिणामस्वरूप कालान्तर में बैकिंग व्यवस्था का जन्म हुआ। इसके सन्दर्भ में विस्तृत उल्लेख धर्मशास्त्रों, स्मृतियों, बौद्ध ग्रन्थों, एवं प्राचीन भारतीय अभिलेखों में अनेकशः प्राप्त होते हैं।

The existence of debt and the money system appears as a special accessory to the ancient Indian economy. In agriculture, along with agriculture, animal husbandry and commerce, Kusid has also been described as a means of livelihood for a prostitute, and the person who earns live only through Kusid is called Kusidi. There were some Mahajans who used to give loans only in the form of food grains, which have been called Vadhurshika. In the scriptures detailed rules related to Lending were laid down, which ensured the safe return of the money of the creditors and also determined the maximum rates of interest and interest to protect the borrowers from exploitation of money lenders. was done. In the scriptures, the use of the noun for the lender is excellent for the lender and for the loanee. It is known from ancient Indian literature, and other sources, that along with trade-commerce, daily work, agricultural animal husbandry etc., people used to take loans on the occasion of Upanayana, marriage funerals, Yagya, and other religious purposes and many people took loans. Unable to pay, they were forced to accept sanyas or slavery. It is known from the Buddhist texts that Gautama Buddha had also forbidden people who could not repay the loan to the Buddhist Sangha, because people would have been entering the Sangh even if they were unable to repay the loan. In this way, there is mention of debt and money system in many contexts of ancient Indian. As a result of this arrangement, the banking system was born at a later time. Detailed references to it are found in scriptures, memoirs, Buddhist texts, and ancient Indian inscriptions.

**मुख्य शब्द** : उत्तमर्ण, अधमर्ण, कुसीद, कुसीदी, वाधुर्षिक, गहपति, कुटुम्बिक, दुर्भिक्ष, पणि, श्रेष्ठी, वणिक।
Uttamarna, Adhamarna, Kusid, Kusidi, Wadhurshik, Gahapati, Kutumbik, Famine, Pani, Shresthi, Vanik.

**प्रस्तावना**

प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन के एक अंग के रूप में ऋण तथा महाजनी का अस्तित्व धर्मग्रन्थों, बौद्ध साहित्य, एवं अभिलेखों में उल्लिखित है। वैदिक समाज प्रकृत्या कृषि एवं पशुपालन से जीविका चलाने वाला एक ग्रामीण समाज था, किन्तु ऋग्वेद के साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि धीरे–धीरे आर्थिक जीवन में विषमता उत्पन्न हो रही थी, जिससे धनी एवं निर्धन के बीच में असमानता बढ़ रही थी। अभाव पीड़ित लोगों को ऋण का सहारा लेना पड़ता था।[1] यह अनुमान होता है कि ऋण प्रायः उपभोग करने वाली वस्तुओं के रूप में दिया जाता था, और ऋण देने का कार्य समृद्ध कृषक, पशुपालक एवं शिल्पी किया करते थे। यह उनका पूरक व्यवसाय था। पूर्व वैदिक युग में न तो ब्याज द्वारा जीविका चलाने वाला वर्ग दिखता है, और न ही ब्याज की निश्चित दर का ही उल्लेख मिलता है।[2] ऋग्वेद में पणियों का उल्लेख मिलता हैं। संभव है ऋण देकर धन प्राप्त करने का व्यवसाय मुख्यतः इन्ही आर्येत्तर व्यापारियों का था, जिन्हे पणि कहा गया है। ऋग्वेद में पणियों के लिए बेकनाट विशेषण का प्रयोग मिलता है, जिसका अर्थ यास्क ने अपने ग्रन्थ निरूक्त में सूदखोर बताया है।[3] इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ऋण या ब्याज पर धन देने का कार्य विशेषतः पणि लोग ही किया करते थे।

उत्तर वैदिक कालीन समाज धीरे–धीरे व्यापार एवं वाणिज्य की ओर अग्रसर हुआ, और साथ ही साथ ऋण देने का व्यवसाय भी अस्तित्व में आया। उत्तर वैदिक ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर वणिक शब्द का प्रयोग किया गया है, और अथर्ववेद में न केवल व्यापार की बल्कि व्यापारिक वस्तुओं की भी चर्चा है।[4] वणिक अधिकांशतः यायावर या भ्रमणशील रहते हुए काफिले बनाकर व्यापार–वाणिज्य करते थें।[5] समाज में इन व्यापारिक या व्यवसायिक गतिशीलता के कारण पूंजीपतियों या धनाढ्य लोगों का एक वर्ग उत्पन्न हुआ, जिनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर श्रेष्ठी के रूप में किया है।[6] ये श्रेष्ठी समाज में अत्यंत सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थें। मैक्डानेल ने अपनी पुस्तक '' वैदिक इन्डेक्स'' में यह उल्लेख किया है कि श्रेष्ठी शब्द व्यापारिक श्रेणियों के मुखिया या प्रधान का द्योतक था।[7] यद्यपि वैदिक सन्दर्भो में श्रेणी संगठनों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, वहॉ केवल इस रूप में पणियों की ही चर्चा की जा सकती है। उत्तर वैदिक युगीन श्रेष्ठी परवर्ती–कालीन सेठों के प्रतिरूप प्रतीत होते है। एन0सी0 बन्द्योपाध्याय ने यह मत व्यक्त किया है कि वैदिक युग के श्रेष्ठी और बौद्ध युग के सेठ्ठी समान रूप से महाजन (बैंकर) के पर्याय थे, जो ऋण एवं महाजनी व्यवस्था का संचालन भी करते थें।[8] हालाकि वैदिक सन्दर्भो में श्रेष्ठियों की गतिविधियों एवं क्रिया कलापों का स्पष्ट निर्देश नही प्राप्त है लेकिन गौतम बुद्ध के युग तक श्रेष्ठियों को महाजनी व्यवसाय में सन्नद्ध पाते है, इसके आधार पर यह संभावना की जा सकती है कि वैदिक काल में भी ये श्रेष्ठी वाणिज्य के साथ ही साथ ऋण देने का कार्य भी करते रहें हों, और वैश्यों का एक वर्ग उत्तर वैदिक युग में एक मात्र कुसीद के माध्यम से ही जीविकोपार्जन करने लगा था।

छठी शताब्दी ई0 पू0 से भारत के राजनीतिक एवं सास्कृतिक इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्तन परिलक्षित होते है। हड़प्पा सभ्यता के पतनोपरान्त इस समय दूसरी बार नगरीय क्रान्ति हुई तथा द्रव्य युग का भी आविर्भाव हुआ और ग्राम्य संस्कृति नगरोन्मुख हुई।[9] इस समय उत्तर भारत में कौशाम्बी, श्रावस्ती, राजगृह, काशी, एवं चम्पा आदि नगर प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र के रूप में स्थापित हुए तथा मुद्रा प्रणाली के आविष्कार एवं लौह प्रविधि तथा लेखन कला के प्रचलन के कारण व्यापार–वाणिज्य में अभूतपूर्व विकास हुआ। बौद्ध जातकों से स्पष्ट होता है कि भारत के व्यापारी पूर्व में सुवर्ण द्वीप, पश्चिम में बेबीलोन तक यात्राएं करते थे। व्यापारिक गतिविधियों की तीव्रता से व्यापार के लिए अधिक पूॅजी की आवश्यकता हुई, जिसके कारण ऋण देने का व्यवसाय भी विकसित हुआ। बौद्ध साहित्य में कुटुम्बियों एवं गृहपतियों (गहपतियों) का उल्लेख मिलता है जो ब्याज पर ऋण देने का कार्य भी किया करते थे।[10] ये कुटुम्बिक एवं गृहपति प्रायः वैश्य वर्ण के होते थे। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि ये अत्यन्त समृद्धशाली एवं धनाढ्य होते थे, और इनमें से कुछ बड़े भू–स्वामी भी थे। नगरों में निवास करने वाले कुटुम्बिक एवं गृहपति प्रायः व्यापार के साथ–साथ ब्याज पर ऋण देने का भी व्यवसाय करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पन्न गृहपति एव0 कुटुम्बिक उद्योग, व्यापार एवं विभिन्न व्यवसायों पर अपना प्रभुत्व रखते थें, तथा उपार्जित धन को ब्याज पर ऋण के रूप में लोगों को प्रदान करते थें। इनका आर्थिक प्रभुत्व गांवों एवं नगरों दोनो में विद्यमान था। गांवों में ये लोग कृषि योग्य विशाल खेतों के स्वामी थें, तो नगरों में अपने वैभव से व्यापार एवं उद्योगों को नियंत्रण में रखते थे।[11] अपनी समृद्धि के कारण ये गृहपति समाज मे अत्यधिक प्रतिष्ठित थे, क्यों कि ये समय–समय पर व्यवसायिकों एवं व्यापारियों से लेकर साधारण गृहस्थों तक को ऋण के रूप में धन प्रदान करने का कार्य किया करते थे।

प्राचीन भारतीय धर्मसूत्रों एवं स्मृति ग्रन्थों में ऋण देकर उसके ब्याज से जीविकोपार्जन करने वाले व्यक्तियों को सामान्यतः कुसीदी एवं वाधुर्षिक कहा गया है। साथ ही स्मृति ग्रन्थों में कुसीद के माध्यम से जीविका चलाने वाले की निन्दा भी की गयी है। लेकिन वहीं वैश्य समुदाय के लिए ऋण देकर ब्याज लेने के व्यवसाय को उचित स्वीकार किया गया है। गौतम स्मृति में इस बात का स्पष्ट निर्देश है कि वैश्यों को कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य के अतिरिक्त ब्याज पर धन देकर अर्थात कुसीद के माध्यम से भी जीविका चलानी चाहिए।[12] कुसीद की परिभाषा करते हुए नारद स्मृति नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि मूलधन के फलस्वरूप निश्चित लाभ की प्राप्ति ही कुसीद है, तथा इस व्यवसाय से जीविका चलाने वाला व्यक्ति कुसीदी है। यथा :

**''स्थान लाभ निमितं हि दान ग्रहण मिष्यतें।**
**तत्कुसीदमिति प्रोक्तं तेन वृत्तिः कुसीदिनाम्।।''**

वशिष्ठ बौधायन एवं आपस्तम्भ धर्मसूत्र के अनुसार कुसीदी लोग अधिकांशतः मुद्राओं के रूप में ऋण दिया करते थें, जबकि वाधुर्षिक वृद्धि या ब्याज के लिए अनाज ऋण के रूप में देते थे।[13] ऐसा अनुमान होता है

कि कुसीदी संभवतः नगर में निवास करते होगें जो द्रव्य या मुद्राओं के रूप में ऋण देने एवं उस पर ब्याज लेने का व्यवसाय करते थे और वाधुर्षिक गांवों में निवास करते थें, जो ऋणदाता के रूप में अनाज का ऋण दिया करते थे। यद्यपि स्मृतियों से स्पष्ट होता है कि कुसीदी एवं वाधुर्षिक अधिकांशतः वैश्य वर्ण के लोग होते थे, किन्तु इसके माध्यम से जीविका चलाने वाले ब्राह्मणों और क्षत्रीयों का वर्ण भी अज्ञात नहीं था। क्योंकि कुसीद के माध्यम से जीविका चलाने वाले ब्रह्मणों को शूद्र से तुलना की गयी है।[14] इन सन्दर्भो से ज्ञात होता है कि यद्यपि कुसीदी एवं वाधुर्षिक विशेषतः वैश्य वर्ण के लोग ही होते थे, किन्तु गांवों में निवास करने वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय भी कुसीदी एवं वाधुर्षिक का कार्य धन उपार्जित करने के लिए करते थे, लेकिन ऐसा करने वाले ब्राह्मण एवं क्षत्रीय की सामाजिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था, और उनकी निन्दा होती थी। कुछ साहित्यिक सन्दर्भों में भी यह उल्लेख मिलता है कि ब्याज पर धन देने या महाजनी का कार्य अत्यंत लाभप्रद था। बाणभट्ट के हर्षचरित में एक स्थल पर बढ़ते हुए दुःख की तुलना वाधुर्षिक के बढ़ते हुए धन से किया गया है।[15]

बौद्ध साहित्य, ब्राह्मण साहित्य एवं प्राचीन भारतीय आभिलेखिक साक्ष्यों से ज्ञात सन्दर्भो से यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारत के विभिन्न कालों में ऋण देने का व्यवसाय करने वाले श्रेष्ठी, महाजन सर्वोपरि थे। महाजन या श्रेष्ठीगण प्रतिष्ठित पूँजीपति थे, जो व्यापार–वाणिज्य करने वाले व्यक्तियों को समय–समय पर आर्थिक सहायता तथा ऋण देकर विभिन्न प्रकार के व्यवसायों का संरक्षण करते थे। यही नही विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण पर इनका नियंत्रण भी यदा–कदा रहता था। श्रेष्ठीगण नगरों में उत्पादित उपभोग की वस्तुओं को गांवों में लोगों तक पहुँचाते थे, तथा गांवों में उत्पादित खाद्यान्न एवं अन्य वस्तुओं को नगरों तक पहुँचाने में अपनी भूमिका का भी निर्वहन करते थे। इस प्रकार पूँजी को नियंत्रित करने के कारण और मध्यस्थ की भूमिका से श्रेष्ठी उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं दोनों से लाभ प्राप्त करते थे, जिसके कारण ये अत्यन्त धनाढ्य एवं धन कुबेरों के रूप में प्रसिद्ध हुए तथा इन्होने महाजनी व्यवसाय अर्थात बैंकर की हैसियत से ऋण देने का कार्य प्रारम्भ किया। बौद्ध जातक ग्रन्थों से यह सूचना प्राप्त होती है कि श्रेष्ठी वैश्य वर्ग के अन्तर्गत सर्वाधिक सम्मान्य समझे जाते थे, जिसके कारण राजदरबारों में भी उनका अत्यधिक सम्मान था।[16]

डॉ. एन.सी. बन्द्योपाध्याय ने मत व्यक्त किया है कि बौद्ध साहित्य तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लिखित श्रेष्ठी एवं सेठि्ठ शब्दों में कोई मौलिक अन्तर नही है और दोनों ही शब्द समान रूप से बैंकर (महाजनी) के सूचक है।[17] बौद्ध ग्रन्थों में कई प्रकार के श्रेष्ठियों का उल्लेख प्राप्त है जैसे, महाश्रेष्ठि, श्रेष्ठि, अनुश्रेष्ठि एवं चुल्लश्रेष्ठि। महाश्रेष्ठि संभवतः नगर का सबसे अधिक धनाढ्य सेठ होता था, और यह बैंकिंग तथा औद्योगिक संगठनों का अध्यक्ष था, इसलिए इसकी स्थिति परामर्शदाता के रूप में भी थी।[18] प्रो0 जयमल राय ने बौद्ध कालीन सेठो की स्थिति पर विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि यह वर्ग मूलतः भू–स्वामियों का था, जिनका उल्लेख कुटुम्बियों एवं गहपतियों के रूप में किया गया है। इन्होने अतिरिक्त खाद्योत्पादन के द्वारा पर्याप्त धन उपार्जित कर लिया था। कालांतर में नगर और गांवों में इनका आर्थिक प्रभुत्व समान रूप से स्थापित हो गया, क्यों कि इनकी स्थिति भूमिपति की थी, और यही नगरों में व्यापारी और ऋण प्रदान करने वाले महाजन थे।[19] जातक कथाओं में उल्लेख मिलता है कि श्रावस्ती का प्रसिद्ध श्रेष्ठि अनाथपिण्डक प्रायः अपने कृषि भूमि के देख–रेख के लिए नगर से गांव को जाता था।[20] ये श्रेष्ठिगण इतने सम्पन्न थें कि प्रायः बौद्ध विहारों एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं को मुक्त हस्त दान देते थें, तथा दुर्भिक्ष, अकाल, अन्य प्राकृतिक संकट के समय जनमानस की आर्थिक सहायता करते थे। लोगों की व्यक्तिगत कठिनाईयों में ऋण देते थे, और उसपर निश्चित यात्रा में ब्याज लेते थे, फिर भी तात्कालिक समस्या समाधान से संतुष्ट ऋणी व्यक्ति इनके प्रति कृतज्ञता एवं सम्मान का भाव रखता था। बौद्ध ग्रन्थों में अनाथपिण्डक का भी उल्लेख बैंकर या महाजन के रूप में मिलता है। आर्थिक विकास के साथ ही ऋणादान की पद्धति में भी उत्तरोत्तर बदलाव होता गया, तथा विविध प्रकार के ऋणों का स्वरूप एवं उनका नामकरण प्रकाश में आया साथ ही ऋणादान से सम्बन्धित नियम धर्मशास्त्रों में संकलित किये गये।

वैदिक ग्रन्थों में भौतिक ऋणों से सम्बन्धित सन्दर्भ विरल प्राप्त है, जिसके कारण भौतिक ऋणों के प्रकारों या परिस्थितियों की चर्चा भी अप्राप्त है। वेदों में केवल आध्यात्मिक ऋणों जैसे देवऋण, पितृऋण, आदि का ही उल्लेख है। किन्तु धर्मसूत्रों, स्मृतिग्रन्थों और व्याकरण ग्रन्थों में न केवल भौतिक ऋणों की चर्चा है बल्कि उनके विविध प्रकारों का भी वर्णन किया गया है। ब्याज की प्रकृति के आधार पर धर्मसूत्रों एवं स्मृति ग्रन्थों में चार से छः प्रकार के ऋणों की चर्चा है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ऋण विभिन्न प्रयोजनों के साथ विभिन्न ऋतुओं के सामयिक आवश्यकताओं के कारण भी लिए जाते थे। इससे ऋण के लेन–देन की प्रक्रिया के साथ–साथ प्राचीन भारतीय आर्थिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

**अध्ययन का उद्देश्य**

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था को समुन्नत करने में श्रेणी संगठनों का महत्वपूर्ण योगदान था, विभिन्न उद्योगों और शिल्प में सन्नद्ध लोगों का अपना आर्थिक संगठन था, जिसका उद्देश्य अपने आर्थिक हितों की रक्षा करना था। श्रेणियों के मुखिया व्यापार वाणिज्य के साथ ऋण देने का भी व्यवसाय करते थें। यद्यपि प्राचीन भारतीय धर्मग्रन्थों में ऋण देकर जीविकोपार्जन करना निंदनीय माना गया है, लेकिन इस व्यवसाय को वैश्य या वणिक वर्ग के लिए उत्तम बताया गया है। स्मृतियों में इस व्यवसाय को कुसीद कहा गया है तथा इस व्यवसाय को करने वाले व्यक्ति कुसीदी । यहॉ तक कि अनेक सन्दर्भों में इस व्यवसाय को करने वाले ब्रह्मण एवं क्षत्रिय वर्ग के लोगों का भी उल्लेख मिलता है। यही नही ऋणों के विविध प्रकार भी उल्लेख्य है। इनसे यह पता चलता है कि समाज में विभिन्न परिस्थितियों में पड़ कर लोग ऋण

लेकर जीवन निर्वहन करते थे। इसके सम्यक अध्ययन से प्राचीन भारतीय समाज के उन पक्षों पर भी प्रकाश पड़ता है, जो सामान्यतः राजनीतिक एवं सामाजिक अध्ययन से स्पष्ट नही हो पाता है।

**निष्कर्ष**

प्राचीन भारत में ऋणादान एवं महाजनी व्यवस्था का स्वरूप आर्थिक विकास के साथ ही परिलक्षित होने लगता है। ऋण देकर जीविका चलाना या इसका उपयोग व्यवसाय के रूप में करना आर्थिक असमानता के कारण प्रचलित हुआ, प्राचीन भारतीय व्यापार–वाणिज्य की वृद्धि में श्रेणी संगठनों का योगदान रहा है। व्यापार के विकास में साथ ही श्रेणियों ने व्यवसायिक गतिविधियों के लिए ऋण देना प्रारम्भ किया, तथा धीरे–धीरे निर्बल लोग जो विभिन्न परिस्थितियों में ऋण लेने के लिए विवश होते थे, यह प्रक्रिया इतनी अधिक प्रचलित हुई कि नित्य नवीन नियम भी निर्मित होने लगें। मुद्रा के प्रचलन एवं लेखन कला के उदय के साथ ही ऋणादान की पद्धति में भी विकास हुआ। यद्यपि इसे व्यवसाय के रूप में निंदा की गयी है, लेकिन वणिकों के लिए इसे उपयुक्त बताया गया है। ऋणादान के नियमों का सम्यक अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है, कि ऋण किसे देना चाहिए और किसे नही जैसे धर्मशास्त्रों में ब्रह्मण स्त्री को ऋण न देने की बात कही गयी है, या ब्रह्मण द्वारा लिया गया ऋण पत्नी देने को बाध्य नही होती है। इन सभी नियमों के सम्यक अध्ययन से सामाजिक जीवन के सर्वथा नवीन पक्ष पर भी प्रकाश पड़ता है। इस दृष्टि से प्राचीन भारत में ऋण एवं महाजनी व्यवस्था का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. *वैदिक इन्डेक्स– 1/156*
2. *वैदिक इन्डेक्स– जिल्द 1 पृष्ठ– 534*
3. *ऋग्वेद– 8/66/10*
4. *अथर्ववेद– 5/7/6*
5. *वही–*
6. *ऐतरेय ब्रह्मण 3/30*
7. *वैदिक इन्डेक्स– पृष्ठ–403*
8. *एन0सी0 बन्द्योपाध्याय– इकोनोमिक लाईफ एण्ड प्रोग्रेस इन एन्सिएंट इण्डिया पृष्ठ– 153–54 एवं 260*
9. *डॉ. विजय बहादुर राव : उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति, पृष्ठ–47*
10. *डॉ. गीता दत्त : प्राचीन भारत में बैंक–व्यवस्था,–पृष्ठ 42, 43*
11. *प्रो. जयमल रायः दि रूरल एण्ड अर्बन इकानामी एण्ड सोशल चेंजेज इन एन्सिएंट इण्डिया, पृष्ठ–45*
12. *गौतम स्मृति– 10/49*
13. *डॉ. गीता दत्त : प्राचीन भारत में बैंक – व्यवस्था– पृष्ठ– 43*
14. *वही*
15. *हर्षचरित, छठा उच्छवास, पृष्ठ–39।*
16. *मदन मोहन सिंह : बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृष्ठ–19*
17. *एन0सी0 बन्द्योपाध्याय– इकोनोमिक लाईफ एण्ड प्रोग्रेस इन एन्सिएंट इण्डिया, पृष्ठ– 260*
18. *वही– पृष्ठ–260*
19. *प्रो. जयमल रायः दि रूरल एण्ड अर्बन इकानामी एण्ड सोशल चेंजेज इन एन्सिएंट इण्डिया, पृष्ठ–127*
20. *जातक – 1 सं0–121*